विधाओं पर आधारित प्रश्न हेतु

कहानी - कहानी गद्य साहित्य की वह सबसे अधिक रोचक एवं लोकप्रिय विधा है जो जीवन के किसी विशेष पक्ष का मार्मिक , भावनात्मक और कलात्मक वर्णन करती है। साहित्य की सभी विधाओ में कहानी सबसे पुरानी विधा है। जनजीवन में यह सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। प्राचीन काल में कहानियों को कथा, आख्यायिका, गल्प आदि कहा जाता था। वर्तमान दौर में भी कहानी सबसे अधिक प्रचलित है। साहित्य में यह अब अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। पुराने समय मे कहानी का मतलब था उपदेश देना या मनोरंजन करना। आज इसका लक्ष्य मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं और संवेदनाओ को व्यक्त करना है। यही कारण है कि प्राचीन काल की कहानी से आज की कहानी बिल्कुल भिन्न हो गयी है। आधुनिक काल में इसकी आत्मा और शैली दोनों बदल गई है।

कहानी के स्वरूप का बोध कराने वाली कुछ परिभाषाएँ -

प्रसिद्ध अमरीकी लेखक एडगर एलन पो के अनुसार "कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्वों के अतिरिक्ति और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो'।

प्रसिद्ध समीक्षक विलियम हेनरी के अनुसार, "लघुकथा में केवल एक ही मूलभाव होना चाहिए। उस मूलभाव का विकास केवल एक ही उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए सरल ढंग से तर्कपूर्ण निष्कर्षों के साथ करना चाहिए."

जान फास्टर ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार दी है, "असाधारण घटनाओ की वह श्रृंखला जो परस्पर सम्बद्ध होकर एक चरम परिणाम पर पहुँचाने वाली हो।"

मुंशी प्रेमचंद्र ने कहानी के बारे में लिखा है- "कहानी का उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, अपितु उसके चरित्र का एक अंग दिखलाना है।"

इस प्रकार कहानी "हिन्दी गद्य की वह विधा है जिसमें लेखक किसी घटना , पात्र अथवा समस्या का क्रमबद्ध ब्यौरा देता है , जिसे पढ़कर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न होता है , उसे कहानी कहते हैं "। प्राचीनकाल में वीरों तथा राजाओं के शौर्य , प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्रा, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्व आदि की कथाएँ ही कहानी के रूप होती थीं।

कहानी के तत्व - कहानी के कुछ विशेष तत्व होते हैं जो कहानी को पूर्णता प्रदान करते हैं। कहानी के निम्नलिखित छह तत्व होते हैं- 1-कथावस्तु 2-चरित्र-चित्रण 3-कथोपकथन 4-देशकाल 5-भाषा-शैली 6-उद्देश्य

कथावस्तु - कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। इसे कहानी का केंद्र माना जाता है। इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसके भी चार अंग होते हैं- आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति तथा अवरोह। यह कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। इसके लिए वस्तु, विषयवस्तु, कथा तथा कथानक आदि समानार्थी शब्द हैं। अंग्रेजी के ' प्लाट ' तथा ' थीम ' शब्द इसी के पर्याय हैं। इस तत्व में कहानीकार अपने जीवन के अनुभवों को प्रस्तुत करता है ।

चरित्र चित्रण- कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है। कहानी में लेखक की दृष्टि प्रमुख पात्र के चरित्र पर अधिक रहती है। इसलिए अन्य पात्रों के चरित्र का विकास मुख्य पात्र के सहारे ही होता है। एक अच्छी कहानी में पात्रों की संख्या अधिक नही होती है।

कथावस्तु के बाद कहानियों में पात्र और उनके चरित्र-चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। एक अच्छा कहानीकार अपनी कथावस्तु में घटनाओं और दृश्यों के अनुकूल ही पात्रों की रचना करता है तथा उनके चरित्र का विकास करता है । बाबू गुलाबराय ने कहानी में चरित्र-चित्रण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-

"आजकल कथानक को उतना महत्व नहीं दिया जाता, जितना कि चरित्र-चित्रण और अभिव्यक्ति को।" चरित्र -चित्रण का सम्बन्ध पात्रों से है। कहानी में पात्रों की संख्या कम से कम होती है । कहानी में पात्रों के चरित्र का पूर्ण विकास क्रम नहीं दिखाया जाता, वरन् प्रायः बने बनाए चरित्र के ऐसे अंश पर प्रकाश डाला जाता है, जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व झलक उठे। कहानी में पात्र और कथावस्तु का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है । दोनों मिलकर कहानी के केन्द्रीय भाव को व्यक्त करते हैं। कहानी में कुछ पात्र सामान्य होते हैं और कुछ प्रतीकात्मक। कहानी का कलेवर छोटा होता है, इसलिए उसमें केवल नायक के चरित्र को ही उभारा जाता है। किसी विशेष परिस्थिति में रखकर कहानीकार नायक के चरित्र का उद्घाटन करना अपना उद्देश्य समझता है। चरित्र- चित्रण की सफलता के लिए पात्रों का गतिशील होना आवश्यक होता है। स्थिर पात्रों का चरित्रांकन निर्जीव-सा प्रतीत होता है।

कथोपकथन या संवाद- कहानी में संवाद का भी विशेष महत्त्व है। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। कथोपकथन के दो कार्य होते हैं- पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करना और कथा की गति को विकसित करना। संक्षिप्त एवं संयत कथोपकथन कहानी में आकर्षण उत्पन्न करने के साथ-साथ पाठकों की जिज्ञासा को शान्त करते हैं। कथोपकथन का प्रत्येक शब्द सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिए ताकि वह पाठकों पर अपना प्रभाव उत्पन्न कर सके। बाबू गुलाबराय के शब्दों में "कथोपकथन या वार्तालाप द्वारा ही हम पात्रों के हृदयगत भावों को जान सकते हैं। यदि वार्तालाप पात्रों के चरित्र के अनुकूल न हो, तो हम उनके चरित्र का मूल्यांकन करने में भूल कर जाएंगे।" कहानी की रोचकता में वृद्धि करने के लिए कथोपकथन अनिवार्य होते हैं। बौद्धिक और शब्दाडम्बरों से जकड़े हुए कथोपकथन कहानी की स्वाभाविक गति में बाधा उत्पन्न करते हैं।

देशकाल या वातावरण- किसी कहानी को असरदार बनाने के लिए ज़रूरी है कि देश काल का पूरा ध्यान रखा जाये, यह कहानी में वास्तविकता लाता है। कहानी को सजीव एवं स्वाभाविक बनाने में देशकाल या वातावरण का सर्वाधिक महत्व है। प्रत्येक कहानी में किसी स्थान, समय और परिस्थिति का चित्रण होता है, इसी चित्रण को वातावरण की संज्ञा प्रदान की जाती है। सफल वातावरण पाठक के मन पर संवेदनात्मक प्रभाव डालता है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने इस सम्बन्ध में लिखा है "वास्तविक जीवन देश, काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियों से निर्मित होता है। अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करता है। कहानी की कथावस्तु और उसके संचालक पात्रों का सम्बन्ध उक्त स्थितियों से होता है। " कहानी में देशकाल और वातावरण का चित्रण सरल, संक्षिप्त और पात्रों की मानसिक परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। वातावरण का अत्यधिक विस्तार कहानी में शिथिलता उत्पन्न कर देता है। एक श्रेष्ठ कहानी में तीनों प्रकार के वातावरण का समन्वय होना आवश्यक होता है । इस प्रकार कहानी में देशकाल और वातावरण वह तत्व होता है जो कहानी के सौन्दर्य में ही वृद्धि नहीं करता वरन् पाठक को निरन्तर आकर्षित और प्रेरित करता है। देशकाल का सर्वाधिक उपयोग आंचलिक कहानियों में कहानीकार करता है। ऐतिहासिक कहानियों में भी देशकाल या वातावरण की महती भूमिका होती है। एक सफल कहानीकार वही है जो देशकाल का सूक्ष्म, सटीक एवं उपयुक्त चित्रण कर पाठक को उस वातावरण का मानसिक प्रत्यक्षीकरण करा देता है।

भाषा-शैली- कहानी के प्रस्तुतीकरण में कलात्मकता लाने के लिए देशकाल के अनुसार अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। भाषा भावों की अभिव्यक्ति का साधन होती है। कहानी जनसामान्य की विधा है, इसलिए कहानी की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जो सरल, सजीव और प्रवाहपूर्ण हो। सफल भाषा वही होती है जो कहानी की कथावस्तु, पात्र-योजना, शैली और वातावरण के अनुकूल हो। निरर्थक शब्द योजना और कठिन वाक्य संरचना कहानी के सौन्दर्य तथा स्वाभाविक गति को नष्ट कर देती है। इसलिए कहानी की

भाषा में प्रवाह, भावानुभूति, आलंकारिकता और बिम्बानुभूति आदि गुणों का होना अनिवार्य होता है। उसमें आवश्यकतानुरूप लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग भी होना चाहिए।

कहानी कला के समस्त तत्वों का उपयोग करने की रीति शैली कहलाती है। बाबू गुलाबराय ने शैली का विवेचन करते हुए लिखा है "शैली का सम्बन्ध कहानी के किसी एक तत्व से नहीं वरन् सब तत्वों से है और उसकी अच्छाई और बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पड़ता

है। कहानी की प्रेषणीयता अर्थात् दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है।" किसी बात के कहने या लिखने के विशेष ढंग या प्रकार को शैली कहते हैं। शैली का सम्बन्ध केवल शब्दों से ही नहीं अपितु विचारों और भावों से भी होता है। शैली की कलात्मकता ही कहानी के प्रति पाठक की रोचकता में वृद्धि करती है।

उद्देश्य- हर कहानी का अपना एक अलग उद्देश्य होता है , यह केवल मनोरंजन हेतु ही नहीं होता , इससे लोगों को प्रेरणा भी जाती है। धर्म प्रचारक अपने उद्देश्य को लोगों तक पहुँचाने के लिए कहानी का ही सहारा लेते हैं। प्रत्येक कहानी की रचना का एक उद्देश्य होता है। मनोरंजन से लेकर गम्भीर समस्या-निरूपण तक कहानी का उद्देश्य हो सकता है। कहानी की रचना के पीछे एक ऐसा उद्देश्य छिपा रहता है जिससे पाठक अभिभूत होकर कुछ सोचने के लिए विवश हो जाता है। किसी विशेष प्रवृत्ति को जाग्रत करके हृदय संवेद्य बनाना, किसी विचारभाव या सिद्धान्त का प्रतिपादन करना अथवा सुन्दर मानवीय भावों का चित्रण करना कहानी का उद्देश्य हो सकता है। आज कहानी में अनेक प्रकार की बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निदर्शन भी किया जाने लगा है। मानव-मूल्यों की व्याख्या करना तथा मानव के शाश्वत भावों, अनुभूतियों और समस्याओं पर प्रकाश डालना ही कहानी का उद्देश्य है। कहानीकार के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है। बाबू गुलाबराय ने कहानी के उद्देश्य के सम्बन्ध में लिखा है "प्रत्येक कहानी में कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है। कहानी का ध्येय केवल मनोरंजन या लम्बी रातों को काट कर छोटा करना नहीं है, वरन् जीवन सम्बन्धी कुछ तथ्य देना या मानव मन का निकट परिचय कराना है।

कहानी के लक्षण:

1. कहानी मानवीय संवेदनाओ की अभिव्यक्ति है।
2. कहानी में कथावस्तु का आकार लघु होता है।
3. कहानी का एक निश्चित उद्देश्य होता है।
4. मनोरंजन के साथ-साथ जीवन की समस्याओं का चित्रण करना भी कहानी का लक्ष्य होता है।
5. कहानी को एक बैठक में सरलता से पढ़ा जा सकता है।
6. कहानी में एक ही केंद्रीय संवेदना होती है तथा उसके सभी तत्व इसी संवेदना को उभारने में सहायता देते हैं।
7. कहानी मूलतः मानव जीवन से सम्बद्ध होती है। उसमें केवल कल्पनिकता न होकर यथार्थ का भी पुट रहता है।

कहानी में शीर्षक का महत्व है

कहानी में शीर्षक का भी विशिष्ट महत्व है। यह संक्षिप्त, आकर्षक एवं कथावस्तु से सम्बद्ध होना चाहिए। शीर्षक ऐसा हो जिससे पाठक कहानी पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाय तभी उसे सफल शीर्षक कहा जा सकता है।

कहानी में कथोपकथन का महत्व है

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने इस सम्बन्ध में लिखा है “कथोपकथन का तारतम्य ऐसा हो जैसे नदी में लहरों की गति और उस पर वायु का सह संगीत, जिसके सहारे पाठक के हृदय में उत्तरोत्तर कहानी पढ़ने की

आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहें। कथोपकथन का प्रत्येक शब्द सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिए। एक श्रेष्ठ कहानी वही है जिसके संवाद छोटे-छोटे, पात्रानुकूल एवं चरित्र अभिव्यंजक हों।

कहानी में वातावरण का महत्व

1- पाठक की इन्द्रियों को प्रभावित करने वाला
2- सौन्दर्य वृत्ति को तृप्त करने वाला
3- पाठक में सच्ची सहानुभूति जाग्रत करने वाला।

कहानी में उद्देश्य का महत्व-

कहानी का मूल उद्देश्य मानवता के शाश्वत मूल्यों की व्याख्या करना तथा जीवन और जगत के मन पर पड़े प्रभाव को अभिव्यक्त करना है। कहानी का उद्देश्य मनोरंजन, उपदेशात्मकता, कौतूहल सृष्टि, आदर्शवाद, समस्या, सुधार, प्रभावात्मकता, मनोवैज्ञानिकता आदि कुछ भी हो सकता है।

कहानी में कथावस्तु का महत्व

कथावस्तु को घटनाओं का आलेख भी कहा जाता है क्योंकि कहानी की सफलता उसमें निहित घटनाओं की कलात्मकता पर आधारित होती है। मौलिकता, संक्षिप्तता, रोचकता, क्रमबद्धता, उत्सुकता, शिल्पगत नवीनता, और विश्वसनीयता आदि कथावस्तु के प्रमुख गुण होते हैं। कथावस्तु के सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक आदि अनेक विषय हो सकते हैं। कहानी की सरसता कथानक के विकास पर निर्भर करती है विकास की पाँच स्थितियाँ होती हैं- 1.आरम्भ 2. आरोह 3. अवरोह 4. चरमसीमा 5. अन्त

नाटक- नाटक नट शब्द से बना है जिसका आशय है - सात्विक भावों का अभिनय। नाटक दृश्य काव्य के अंतर्गत आता है। इसका प्रदर्शन रंगमंच पर होता है। भारतेंदु हरिशचन्द्र ने नाटक के लक्षण देते हुए लिखा है- नाटक शब्द का अर्थ नट लोगों की क्रिया है। दृश्य-काव्य की संज्ञा-रूपक है। रूपकों में नाटक ही सबसे मुख्य है इससे रूपक मात्र को नाटक कहते है। हिन्दी मे नाटक लिखने का प्रारंभ पद्म के द्वारा हुआ। लेकिन आज के नाटकों मे गद्य की प्रमुखता है। नाटक गद्य का वह कथात्मक रूप है , जिसे अभिनय संगीत, नृत्य, संवाद आदि के माध्यम से रंगमंच पर अभिनीत किया जा सकता है।

नाटक काव्य का ही एक रूप है। जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती है उसे नाटक या दृश्य-काव्य कहते हैं। नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती है। दृश्य काव्य होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षा कृत अधिक घनिष्ठ रूप से संबद्धहै।

नाटक की परिभाषा- बाबू गुलाबराय के अनुसार "नाटक में जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते-फिरते सप्राण रूप में अंकित किया जाता है। " नाटक में फैले हुए जीवन व्यापार को ऐसी व्यवस्था के साथ रखते हैं कि अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके। नाटक का प्रमुख उपादान है उसकी रंगमंचीयता। हिन्दी साहित्य मे नाटकों का विकास वास्तव मे आधुनिक काल मे भारतेंदु युग में हुआ।

नाटक के तत्व- पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार नाटक के प्रमुख तत्व हैं:

1. कथावस्तु 2. पात्र चरित्र-चित्रण 3. संवाद या कथोपकथन 4. देशकाल और वातावरण (संकलनत्रय) 5. भाषा-शैली 6. उद्देश्य

भारतीय विद्वानों के अनुसार नाटक के तत्व इस प्रकार है:

1. कथावस्तु 2. नेता (नायक) 3. अभिनय 4. रस 5. वृत्ति

[1] कथावस्तु- इससे तात्पर्य कथावस्तु से है। कथावस्तु नाटक का प्रधान तत्व है। भारतीय आचार्यो ने वस्तु के स्रोत संगठन की दृष्टि से नाट्य वस्तु का विस्तृत विवेचन किया है। नाटयवस्तु का समुचित विकास हो इसलिए भारतीय नाटयशास्त्र में वस्तु के भेद आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। साथ

ही नाटयवस्तु जिन संवादों के माध्यम से प्रकट होती है, उस पर भी ध्यान दिया है।

[2] नेता- भारतीय नाटयशास्त्र के अनुसार दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है- नेता। इसके अंतर्गत नाटक का नायक तथा उसके सहयोगी चरित्र योजना का विश्लेषण किया जाता है। भारतीय नाटयशास्त्र में नेता या नायक सभी दृष्टियों से विशेष माना जाता है। उसके कार्य व्यापार की कल्पना उदात्त, उदार दृष्टियों से की गई है।

भारतीय आचार्यों ने चार प्रकार के नायक या नेता माने हैं-

1- धीरोदात्त 2- धीरललित 3- धीरप्रशांत 4- धीरोद्धत।

भारतीय आचार्यों ने नायिका के निम्न गुण माने है-

1- रूपवती 2- गुणवंती 3- शीलवती 4- यौवना 5- माधुर्य आदि

[3] रस- भारतीय नाटयशास्त्र में रस की सिद्धि ही नाटक का उद्देश्य मानी गई है। भरतमुनि के अनुसार रस के अभाव में नाटक में कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। नाटक में श्रृंगार रस, वीर, शांत में से कोई एक रस प्रमुख होना चाहिए और शेष रसों की निष्पति अंगी रस के अश्रित रूप में होनी चाहिए। भारतीय नाट्य शास्त्र में रस प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन किया गया है।

[4] अभिनय- नाट्य के समुचित विषय का या वस्तु विधान का प्रेक्षागृहों में बने रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुतीकरण अभिनय कहलाता है। भारतीय नाट्य शास्त्र में अभिनय के भेद तथा रंगमंच का विस्तार से विवेचन किया गया है। अभिनय मुख्यत: चार प्रकार का होता है - आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक।

[5] वृत्ति- नायक (पात्र) के कार्य-व्यापार को नाटक में वृत्ति कहा जाता है। वृत्तियाँ चार प्रकार की होती हैं - कौशिकी, सात्विती , आरभटी और भारती

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अनुसार नाटक के तत्व- पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अनुसार नाटक के निम्न तत्व होते हैं-

[1]- कथावस्तु या कथानक

यह नाटक का प्राणतत्व है। कथावस्तु ऐतिहासिक, पौराणिक, कल्पित, मिश्रित किसी भी प्रकार की हो सकती है। आजकल ऐतिहासिक, पौराणिक कथा प्रसंगों का प्रतीकात्मक तथा मिथकीय प्रयोग कथावस्तु के रूप में किया जा रहा है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है - आधिकारिक कथा और प्रासंगिक कथा। पाश्चात्य धारणा के अनुसार कथा विकास में संघर्ष तत्व प्रधान होता है तथा नाटक का अंत प्रायः दुखांत होता है।

[2]- चरित्र चित्रण

पात्र योजना तथा चरित्र चित्रण के प्रति पाश्चात्य दृष्टि स्वाभविक और यथार्थ रही है। अतः भारतीय आचार्यों के समान नायक तथा अन्य चरित्रों के प्रति आदर्शवादी दृष्टि पाश्चात्य विद्वानों की नहीं है। अरस्तु के अनुसार चरित्र चित्रण में नाटककार को चार बातों की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। अच्छा चरित्र, चरित्र का औचित्य, जीवन के अनुरूप और चरित्र में सुसंगति। चरित्र चित्रण से तात्पर्य उसके आंतरिक व्यक्तित्व और बाहय व्यक्तित्व के प्रकटन से है। यह प्रकटन नाट्य व्यापार तथा संवादों के माध्यम से हो सकता है। पात्रों को व्यक्ति पात्र तथा प्रतिनिधि पात्र दो भागों में विभाजित किया जा सकताहै।

[3]- कथोपकथन या संवाद-

नाटक संवादों के द्वारा लिखा जाता है। पात्र के चरित्र चित्रण का विकास, रोचकता, वातावरण सृजन संवादों के माध्यम से होता है। इस तत्व के अभाव में नाटक की कल्पना ही साकार नहीं हो सकती। संवाद जितने सार्थक, संक्षिप्त, वक्र, शक्ति संपन्न होते हैं, नाटक उतना ही सफल होता है। अतः संवादों की भाषा, सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए।

[4]- देशकाल वातावरण-

नाटक में जिस देशकाल का दृश्य उपस्थित किया जाता है, उसे साकार करने के लिए नेपथ्य, वेषभूषा, रंगभूषा, भाषा, सांस्कृतिक संकेत आदि पर ध्यान देना अनिवार्य है। पाश्चात्य नाट्य- विदों ने

देशकाल का निर्वाह करते समय संकलन त्रय का प्रतिपादन किया है। संकलन त्रय अर्थात् स्थल, समय, काल की एकता। नाटक में कथा के युग के अनुसार हो और उसमें समाज और राजनीति की परिस्थितियों का अंकन किया गया हो। ऐतिहासिक नाटकों में तो इन तत्वों का निर्वाह अत्यंत अपरिहार्य है। सफल नाटककार दृश्य विधान, मंच-व्यवस्था वेषभूषा, अभिनय आदि के द्वारा सजीव वातावरण की सृष्टि कर लेता है।

[5]- भाषा-शैली

संवादों को सरस एवं प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा शैली का आश्रय लेना अनिवार्य है। नाटक की भाषा सहज, सरल, सजीव, अभिनयानुकूल होनी चाहिए। गंभीर तथा हास्य-व्यंग्य प्रधान शैली तो सर्वमान्य है। यह माना जाता है कि सफल शैली के लिए सरलता अनिवार्य शर्त है। साथ ही वह कलात्मक एवं प्रभावशाली भी होनी चाहिए। भाषा के अलंकृत , लाक्षणिक, वक्र और प्रभावपूर्ण होने पर नाटक का सौंदर्य अधिक बढ़ जाता है।

[6]- उद्देश्य

पाश्चात्य परंपरा के अनुसार जीवन यथार्थ, जीवन संघर्ष को सामने लाना नाटक का उद्देश्य है। नाटक मात्र मनोरंजन के साधन नहीं है। यथार्थ से जूझते हुए अपने समाज की सार्थक प्रस्तुति नाटक का लक्ष्य रहा है।

नाटकीय शिक्षण का महत्त्व- नाटक किसी घटना को हमारी कल्पना से निकाल कर मंच पर साकार करती है। जिसके विभिन्न आयाम एवं महत्व इस प्रकार हैं-

1- कविता के चरमोत्कर्ष की भाषा 2- अनेकानेक रुचियों की संतुष्टि का माध्यम 3- यथार्थ की पृष्ठभूमि पर मानव- मन की साकार प्रस्तुति 4- नाटक गद्य, पद्य का मिश्रित रूप है

5- सर्वजन हिताय तथा सर्वजन बहुताय से परिपूर्ण 6- सामान्य जन की भाषिक अभिव्यक्ति

7- शिक्षण का प्रभावकारी माध्यम

[1]- कविता के चरमोत्कर्ष की भाषा- नाटक की प्रस्तुति में कविता की भाषा अपने पूरे उत्कर्ष को प्राप्त करती है।है। काव्य में वर्णित दृश्य या मानसिक अवस्था को कल्पना में रुपाकार किया जाता है।

[2]- अनेकानेक रुचियों की संतुष्टि का माध्यम- नाटक एक ऐसा साहित्यिक साधन है जिसके द्वारा मानव की विभिन्न रुचियों की संतुष्टि होती है। भरत से लेकर वर्तमान काव्य शास्त्रीयों तक सभी ने इसकी पुष्टि की है। जिसका तात्पर्य है "ऐसा कोई ज्ञान, योग, विद्या, कला अथवा शिल्प नहीं है, जिसे नाटक के माध्यम से प्रस्तुत न किया जा सके।

[3]- यथार्थ की पृष्ठभूमि पर मानव- मन की साकार प्रस्तुति- नाटक में कल्पना के स्थान पर वास्तविकता अधिक होता है। यही कारण है कि नाटक जीवन के अधिक निकट होता है। सच तो यह है जीवन को रूपायित करने का सबसे सटीक माध्यम है

[4]- नाटक गद्य, पद्य का मिश्रित रूप है- नाटक की रचना गद्य, पद्य के मिश्रित रूप में ही सम्भव है। भरत नें 'नान्दी पाठ' से जिस परम्परा की नींव डाली वो आज भी भारतीय नाटय में किसी न किसी रूप में मौजूद है।

[5]- सर्वजन हिताय तथा सर्वजन बहुताय से परिपूर्ण- नाटक में लोकरंजन के साथ ही समाज के लोकहित की भावना प्रमुख होती है। इससे दर्शकों तथा पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन का उददेश्य तो होता ही है, उससे शिक्षा तथा प्रेरणा भी मिलती है।

[6]- सामान्यजन की भाषिक अभिव्यक्ति- नाटक जन सामान्य की भावनाओं को प्रस्तुत करने का सबसे सशक्त माध्यम है। रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाने पर ही नाटक जीवंत व सप्राण हो पाता है।

[7]- शिक्षण का प्रभावकारी माध्यम- मनौवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि श्रव्य-दृश्य माध्यम के शिक्षण को सर्वोत्तम रूप से प्रभावकारी बनाया जा सकता है। नाटक एक जीवंत श्रव्य-दृश्य उपादान है। इस महत्व को आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों ने भी स्वीकार किया है।

नाटक अभिनय के आयाम- नाटक अभिनय के 04 आयाम होते हैं -

[1]- आंगिक आयाम [2]- वाचिक आयाम [3]- आहार्य आयाम [4]- सात्विक आयाम

[1] आंगिक आयाम- आंगिक अभिनय का अर्थ है शरीर , मुख और चेष्टाओं से कोई भाव या अर्थ प्रकट करना। सिर , हाथ, कटि, वक्ष, पार्श्व और चरण द्वारा किया जानेवाला अभिनय या आंगिक अभिनय कहलाताहै।

[2] वाचिक आयाम- अभिनेता रंगमंच पर बोलकर जो कुछ व्यक्त करता है वह सब वाचिक अभिनय कहलाता है।

[3] आहार्य आयाम- आहार्य अभिनय वास्तव में अभिनय का अंग न होकर नेपथ्य कर्म का अंग है और उसका संबंध अभिनेता से उतना नहीं है जितना नेपथ्य सज्जा करने वाले से है।आज के सभी प्रमुख अभिनेता और नाट्य प्रयोक्ता यह मानने लगे हैं कि प्रत्येक अभिनेता को अपनी मुखसज्जा और रूपसज्जा स्वयं करनी चाहिए।

[4] सात्विक आयाम- सात्विक अभिनय तो उन भावों का वास्तविक और हार्दिक अभिनय है जिन्हें रस सिद्धांत वाले सात्विक भाव कहते हैं और जिसके अंतर्गत , स्वेद, स्तंभ, कंप, अश्रु, वैवर्ण्य, रोमांच, स्वरभंग और प्रलय की गणना होती है। इनमें से स्वेद और रोमांच को छोड़ शेष सबका सात्विक अभिनय किया जा सकता है। अश्रु के लिए तो विशेष साधना आवश्यक है , क्योंकि भाव मग्न होने पर ही उसकी सिद्धि हो सकती है।

हिंदी के प्रसिद्ध नाटकों के नाम- अंधेर नगरी- भारतेंदु हरिश्चंद, ध्रुवस्वामिनी- जयशंकर प्रसाद, अंधा युग- धर्मवीर भारती, आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश, बकरी- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना , एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष, कबीरा खड़ा बाज़ार में- भीष्म साहनी, महाभोज- मन्नू भंडारी

रेडियो रूपक/नाटक - रेडियो श्रव्य माध्यम है। नाटक की जिस विधा को रेडियो पर सुनने से उसका काल्पनिक चित्र उत्पन्न होता है और उससे आनंदानुभूति होती है उसे रेडियो रूपक या नाटक कहा जाता है । रेडियो नाटक को अँधेरे का नाटक भी कहा जाता है क्योंकि इसका मंचन अदृश्य होता है अर्थात इसे देखा नहीं जाता बल्कि सिर्फ सुना जाता है। नाटक लेखकों द्वारा रेडियो पर प्रसारण के लिए जो नाटक लिखे जाते हैं उन्हें रेडियो नाटक कहते हैं। भाषा, संवाद, ध्वनि एवं संगीत रेडियो नाटक के उपकरण होते हैं।

वर्तमान समय में रेडियो नाटक विधा स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित हो गई है। रेडियो नाटक ध्वनि और शब्दों का नाटकीय सामंजस्य है। रेडियो नाटकों में श्रोता का सहज संबंध पात्रों के अन्तर्मन से जुड़ जाता है। रेडियो श्रव्य माध्यम है। अत: रेडियो नाटक भी श्रव्य होते हैं। इसमें ध्वनि की प्रधानता होती है। डॉ. राम कुमार वर्मा ने रेडियो नाटक को ध्वनि नाटक भी कहा है। इसे अंधे का सिनेमा भी कहा जाता है क्योंकि इसे मात्र सुनकर ही आनंद की अनुभूति होती है। रेडियो नाटक ध्वनि और संगीत का समन्वित रूप है। पात्रों का कार्य व्यापार, ध्वनियों का प्रभाव , संवादों की गति और संगीत को कथा सूत्र में पिरोकर रेडियो पर जिसका प्रस्तुतीकरण किया जाता है, वही रेडियो रूपक है।

कहानी का नाट्य रूपांतर करते समय इन महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना चाहिये-

कहानी एक ही जगह पर स्थित होनी चाहिये। कहानी का संवाद नाटक के संवाद से भिन्न होता है। नाटक संवाद के आधार पर आगे बढता है। इसलिये संवाद का समावेश करना जरूरी होता है। कहानी का नाट्य रूपांतर करने से पहले उसका कथानक बनाना बहुत जरूरी है। नाटक में हर एक पात्र का विकास कहानी की ही तरह होता है। इसलिये कहानी का नाट्य रूपांतर करते वक्त पात्र का विवरण करना बहुत जरूरी होता है। कहानी कागजी होती है। एक व्यक्ति कहानी लिख सकता है पर जब नाट्य रूपांतरण की बात आती है, तब एक समूह या टीम की जरूरत होती है। कहानी का नाट्य रूपांतर ण करने में निर्देशक का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण काम होता है।